उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के भाषायी विश्लेषण की समालोचना

प्रियान्शु अग्रवाल

शोध छात्र (यू०जी०सी०- जे०आर०एफ०), दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज- 211002.

सार

प्रस्तुत शोध-पत्र भाषायी विश्लेषणात्मक दर्शन की प्रकृति एवं सीमाओं को व्यापक रूप से विट्गेन्सटाइन की अवधारणा के संदर्भ में विवेचित करता है। विट्गेन्सटाइन के दर्शन में किन प्रभावों के कारण साधारण भाषा दर्शन का उदय होता है एवं यह किस रूप में विश्लेषणात्मक दर्शन की परम्परा को समकालीन पाश्चात्य दर्शन में रेखांकित करता है, इसको स्पष्ट करना इस शोध-पत्र का उद्देश्य है। साथ ही पूर्व के दर्शनों एवं उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के दर्शन में वह कौन सा मूलभूत वैषम्य है, जिसके कारण भाषायी विश्लेषणात्मक दर्शन में नूतन आयाम संज्ञान में आते हैं, इसे भी अभिव्यक्त करना है। इस क्रम में विट्गेन्सटाइन के भाषा सम्बन्धी विचारों जैसे कि दर्शन का कार्य नवीन ज्ञान का प्रस्तुतीकरण नहीं है, दर्शन मात्र नैदानिक है, दार्शनिक समस्याएँ समस्याभास मात्र है इत्यादि का मूल्यायन किया गया है एवं विट्गेन्सटाइन के दर्शन के संदर्भ में प्रायः अन्य प्रतिष्ठित दार्शनिकों जैसे- राईल, आस्टिन, स्ट्रासन आदि के द्वारा जो आपत्तियाँ उठायी गई हैं, उनकी समालोचना प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द

विट्गेन्सटाइन, विश्लेषणात्मक दर्शन, आदर्श भाषा, साधारण भाषा, भाषायी विश्लेषण, राईल, आस्टिन, स्ट्रासन।

परिचय

लुडविग विट्गेन्सटाइन बीसवीं शताब्दी के प्रतिष्ठित दार्शनिकों में से एक हैं, जिन्होंने विश्लेषणात्मक दर्शन के अन्तर्गत दर्शन एवं भाषा के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। विट्गेन्सटाइन का दर्शन के प्रति योगदान इस प्रकार परिलक्षित किया जा सकता है कि यदि फ्रेगे विश्लेषणात्मक दर्शन के पितामह एवं रसेल प्रणेता है, तो विट्गेन्सटाइन के विचार विश्लेषणात्मक दर्शन को नींव प्रदान करते हैं जो कि दार्शनिक क्रान्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसे रेखांकित करते हुए जी०एच० वॉन राइट ने कहा कि विट्गेन्सटाइन के प्रभाव से ग्रहण की गई विविध विधियों का मूल्यांकन एवं स्पष्टीकरण बीसवीं सदी के दर्शन एवं विचारों, जिनका लेखन अभी बकाया है, के इतिहास में एक प्रमुख अध्याय का निर्माण करेगा।[1]

विट्गेन्सटाइन का भाषाई विमर्श

सामान्यतः विट्गेन्सटाइन के दार्शनिक विचारों का विभाजन मुख्यतः दो भागों में किया जाता है, जिन्हें क्रमशः पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन का दर्शन एवं उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन का दर्शन कहा जाता हैं। पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन के दर्शन का उद्देश्य साधारण भाषा में मौजूद अस्पष्टता एवं जटिलता को दूर करना था, इसलिए उन्होंने अपनी ख्यातिलब्ध कृति *Tractatus-Logico-Philosophicus* (1921) के अन्तर्गत तार्किक अथवा प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया। उनके अनुसार आदर्श अथवा तार्किक भाषा का कार्य साधारण भाषा का स्थान ग्रहण करना नहीं है, अपितु साधारण भाषा में उपस्थित अस्पष्टता एवं जटिलता का स्पष्टीकरण कर देना है। विट्गेन्सटाइन ने स्वयं *Tractatus* में कहा कि दैनिक (साधारण) भाषा मानवीय शरीर का एक अंश है एवं उससे कम जटिल नहीं है।[2] इसके अतिरिक्त, आर०जे० बर्नस्टाइन के अनुसार इस भाषा का उद्देश्य छिपे हुए को सुस्पष्ट रूप से प्रदर्शित करना है, हम इस प्रकार की भाषा को सुस्पष्ट भाषा (*Perspicuous Language*) कहेगें।[3] इसी प्रकार डब्लू० सेलर्स ने अपने आलेख "*Naming and Saying*" में इसे सीढ़ी भाषा (*Ladder Language*) की संज्ञा दी है।[4] Tractatus के प्रकाशन के उपरान्त, पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन का मानना था कि वस्तुतः उन्होंने दर्शनशास्त्र में मौजूद सभी दार्शनिक समस्याओं का निवारण कर दिया है और इस कारण से वे दर्शनशास्त्र को त्यागकर ऑस्ट्रिया वापस चले गए एवं साथ ही साथ उन्होंने पुचबर्ग (ऑस्ट्रिया का एक कस्बा) में अध्यापन कार्य आरम्भ कर दिया। ध्यातव्य हो कि पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन के दार्शनिक विचारों के प्रभाव से विश्लेषणात्मक दर्शन के इतिहास में एक नवीन परम्परा का उदय हुआ, जिसे प्रायः तार्किक भाववाद (*Logical Positivism*) नाम से जाना जाता है। इसकी पुष्टि स्वयं तार्किक भाववादी दार्शनिक ए०जे० एयर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *Language, Truth and Logic* की प्रस्तावना में करते हुए लिखते हैं कि इस पुस्तक में जिन विचारों को प्रस्तुत किया गया है, वे बर्ट्रेंड रसेल एवं विट्गेन्सटाइन (पूर्ववर्ती) के सिद्धान्तों से प्राप्त हुए हैं, जो कि बर्कले एवं डेविड ह्यूम के अनुभववाद का तार्किक परिणाम हैं।[5] यद्यपि, कालान्तर में अनेक प्रतिष्ठित दार्शनिकों विशेषतः एफ०पी० रैमजे एवं पियरो स्राफा ने *Tractatus* के विरूद्ध तीक्ष्ण प्रतिक्रिया दिया, जिसके फलस्वरूप विट्गेन्सटाइन को उसमें (*Tractatus*) वर्णित सभी दार्शनिक समस्याओं पर पुनर्विचार करना पड़ा एवं अपने पूर्ववर्ती विचार को त्यागना पड़ा। विट्गेन्सटाइन के शब्दों में स्राफा के साथ उनके विमर्श ने उन्हें एक ऐसे वृक्ष की भांति अनुभव कराया, जिसकी समस्त शाखाएँ काट दी गई हैं।[6]

विट्गेन्सटाइन ने स्वयं को 1929 ई० तक दर्शनशास्त्र से पृथक रखा; तत्पश्चात् वे पुनः दर्शनशास्त्र से प्रभावित होकर कैम्ब्रिज आ गए क्योंकि उन्हें इस समय तक अपने पूर्ववर्ती विचारों की कृत्रिमता एवं भ्रामकता का आभास हो गया था, इस कारण वे अपने उत्तरवर्ती दार्शनिक विचारों में पूरी निष्ठा के साथ पूर्ववर्ती अवधारणाओं के निराकरण करने में संलग्न हो गए। विट्गेन्सटाइन की दर्शनशास्त्र में पुनः वापसी का वर्णन करते हुए जॉन पॉसमोर ने लिखा कि यद्यपि अपने मौन के वर्षों में वे (विट्गेन्सटाइन) पूर्णतः अकेले नहीं थे। रैमजे एवं ब्रेथवेट ने उन्हें ऑस्ट्रियन निर्जन स्थान से ढूँढ निकाला और कुछ समय के लिए विट्गेन्सटाइन श्लिक एवं वाइसमैन (तार्किक भाववादियों) के निकटतम संपर्क में थे। 1928 के आसपास दर्शनशास्त्र में पुनः उनकी रुचि जाग्रत हुई। यह प्रेरणा ब्राउवर के गणित के मूलाधार (*Foundations of Mathematics*) विषय पर व्याख्यान में वर्णित समस्याओं के समूह हो सकते है, जो वस्तुतः विट्गेन्सटाइन को दर्शनशास्त्र की ओर ले गए। 1929 में वे पुनः कैम्ब्रिज लौट आए।[7] 1929 के पश्चात् ही उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के दर्शन में भाषायी विश्लेषण का आरम्भ उनके व्याख्यानों एवं लेखन के द्वारा होता है। यहाँ यह उल्लिखित करना आवश्यक है कि विट्गेन्सटाइन ने अपने जीवन काल में *Tractatus* के अलावा केवल एक आलेख "*Some Remarks On Logical Form*" (1929) को ही प्रकाशित किया था। विट्गेन्सटाइन ने 1930.35 के दौरान जो व्याख्यान दिए उन्हें "*The Blue Book*" एवं "*The Brown Book*" के नाम से जाना जाता है, जिसकी प्रतियाँ उनके अनुयायियों के मध्य वितरित की गई थी। विट्गेन्सटाइन के इन दार्शनिक विचारों की परिणिति उनकी कृति *Philosophical Investigations* (1953) में होती है, जो उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुई।

उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन अपनी *Investigations* में 'नव्य स्तरीय विश्लेषण' (*New Level Analysis*) के स्थान पर 'समान स्तरीय विश्लेषण' (*Same Level Analysis*) को स्वीकार करते हैं; जिसमें प्रथम प्रकार के विश्लेषण का सम्बन्ध आदर्श भाषा से है तो वहीं द्वितीय का सम्बन्ध साधारण भाषा से है। पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन की मान्यता थी कि साधारण भाषा जटिल है इसलिए दार्शनिक समस्याओं का समाधान इस भाषा के स्तर पर संभव नहीं है, इस कारण वे आदर्श भाषा का समर्थन करते है; जबकि विट्गेन्सटाइन अपनी उत्तरवर्ती अवस्था में यह स्वीकार करते हैं कि जब दार्शनिक समस्याएँ साधारण भाषा के स्तर पर उत्पन्न होती है तो उनका समाधान भी साधारण भाषा के स्तर पर ही होना चाहिए। इस संदर्भ में रिचर्ड रोर्टी ने कहा कि दार्शनिक समस्याएँ ऐसी समस्याएँ हैं जिनका निदान (अथवा विघटन) या तो भाषा में सुधार करके अथवा हम वर्तमान में जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उस भाषा की अधिक समझ विकसित करके किया जा सकता है।[8] इस प्रकार जहाँ एक ओर पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन के दार्शनिक विश्लेषण के मूल में फ्रेगे, रसेल जैसे दार्शनिकों के विचार थे, तो वहीं दूसरी ओर उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के भाषायी विश्लेषण का कोई पूर्वज नहीं था। इसकी पुष्टि जी०एच० वॉन राइट के कथन से होती है कि उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन को अन्यत्र कहीं से वैसी प्रेरणा नहीं मिली जैसी कि पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन को फ्रेगे एवं रसेल से प्राप्त हुई थी।[9] हालांकि, यदि किसी को भी *Tractatus* के केन्द्रीय विचारों को अधिक स्पष्टता से समझना है तो उसे *Investigations* में वर्णित उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के विश्लेषण, निकष आदि के संदर्भ में समझना चाहिए अर्थात् उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के दर्शन का सचेत अध्येता इस भावना से नहीं बच सकता है कि यहाँ वे (विट्गेन्सटाइन) मुख्यतः अपने पूर्ववर्ती विचारों से संघर्षरत हैं। इसी ओर संकेत करते हुए ए०एम० क्विंटन कहते है कि यदि विट्गेन्सटाइन ने अपने निराकरणों (*Tractatus* के) को हूबहू ग्रहण किया होता, तो पिछले चालीस वर्षों में ब्रिटिश दर्शन अत्यन्त भिन्न एवं निर्बल होता।[10]

उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन ने *Investigations* के अन्तर्गत *Tractatus* के कई सिद्धान्तों का निराकरण करने के पश्चात् साधारण भाषा दर्शन की नींव रखी। पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन ने *Tractatus* में स्वीकार किया कि प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति का निश्चित एवं स्पष्ट अर्थ होता है, किन्तु अब अपने उत्तरवर्ती अवस्था में उन्हें प्रतीत होता है कि यह मात्र एक पूर्वाग्रह था। जैसा कि विट्गेन्सटाइन ने स्वयं कहा कि मनुष्य जो दार्शनिक उलझन में है किसी नियम को एक शब्द के अनुरूप देखता है, इस नियम को लगातार लागू करने का प्रयास करता है और उन स्थितियों का विरोध करता है जहाँ यह विरोधाभास परिणाम देता है।[11] विट्गेन्सटाइन की *Tractatus* में मान्यता है कि अर्थ का तात्पर्य एक विषय है एवं विषय ही इसका अर्थ है अथवा दूसरे शब्दों में, किसी शब्द का अर्थ वह विषय है जिसे यह संदर्भित करता है; जबकि अपने उत्तरवर्ती अवस्था में विट्गेन्सटाइन कहते है कि सर्वप्रथम, शब्दों का अर्थ विषय में निहित नहीं होता है जैसे- यदि 'शिव' शब्द का अर्थ 'शिव' (यथार्थ जगत में मौजूद मनुष्य) है तो 'शिव' की मृत्यु के पश्चात् यह शब्द 'शिव' निरर्थक होगा, किन्तु यह उचित नहीं है एवं यह कथन भी उचित नहीं होगा कि 'शिव' (शब्द) का अर्थ मृत हो गया है लेकिन यह कथन 'शिव की मृत्यु हो गई' उचित एवं सार्थक होगा। इसे जॉन पॉसमोर के शब्दों में अधिक स्पष्टता से जाना जा सकता है कि 'स्लैब' (पटिया) शब्द का अर्थ उन वस्तुओं में निहित नहीं है जिसमें वह नामित होता है, अपितु जिस प्रकार से इसे भाषा में प्रयोग किया जाता है उसमें यह नामित होता है। विट्गेन्सटाइन तर्क देते हैं कि यदि वास्तविक स्लैब (भौतिक पदार्थ) 'स्लैब' शब्द के अर्थ का भाग था तो हम यह कहने लायक होते कि जैसे- मैंने 'स्लैब' शब्द के अर्थ का एक हिस्सा तोड दिया है अथवा आज मैंने 'स्लैब' शब्द के अर्थ के सौ टुकड़े कर दिए है आदि। विट्गेन्सटाइन इंगित करते हैं कि इस प्रकार के वाक्य स्पष्ट रूपेण निरर्थक है- जो हमें यह देखने में मदद करते हैं कि 'अर्थ का नामकरण सिद्धान्त' (*Naming Theory of Meaning*) भी निरर्थक है।[12] द्वितीयतः, कई ऐसे शब्द भी हैं जो किसी वस्तु को निर्देशित नहीं करते हैं जैसे- किन्तु (*But*) और (*And*), शायद (*Perhaps*) इत्यादि। इससे यह ज्ञात होता है कि अर्थ एक वस्तु नहीं है। यही कारण है कि विट्गेन्सटाइन ने अपनी Investigations में कहा कि मामलों के वृहत् समूहों के लिए, यद्यपि सभी के लिए नहीं, जिसके लिए हम 'अर्थ' शब्द का प्रयोग करते है उसे इस तरह पारिभाषित किया जा सकता है कि किसी शब्द का अर्थ उसके भाषायी प्रयोग पर आधृत है।[13]

विट्गेन्सटाइन *Tractatus* में यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि प्रत्येक शब्द का निश्चित या स्पष्ट अर्थ होता है। उन्होंने अर्थ की निश्चितता के आधार पर ही अपने पूर्ववर्ती विचारों में 'अर्थ के चित्रण सिद्धान्त' (*Picture Theory of Meaning*) का प्रतिपादन किया, जिसकी प्रमुख मान्यता है कि भाषा जगत् का चित्रण करती है और इसीलिए उन्होंने भाषा एवं जगत् के मध्य सम्बन्ध को स्थापित किया। यद्यपि उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन का मानना यह है कि किसी शब्द का अर्थ निश्चित न होकर अपितु उसके प्रयोग पर निर्भर होता है क्योंकि किसी शब्द अथवा वाक्य का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में होता है इसलिए संदर्भों के अनुरूप ही प्रत्येक शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा कि एक शब्द किस प्रकार कार्य करता है कोई भी इसका अनुमान नहीं लगा सकता है, इसके लिए उसे शब्द (अथवा वाक्य) का प्रयोग देखना होगा और उसी से सीखना होगा।[14] पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन का मत था कि दर्शनशास्त्र की समस्याएँ वस्तुतः अर्थ की समस्याएँ हैं, जबकि अपने उत्तरवर्ती विचारों में वे स्वीकार करते हैं कि दार्शनिक समस्या अर्थ की समस्या नहीं है अपितु प्रयोग की समस्या है। यदि हम व्यवहार में शब्दों का प्रयोग उसके वास्तविक संदर्भ में करते हैं तो वहाँ कोई दार्शनिक समस्या उत्पन्न नहीं होगी। वे कहते हैं कि

दार्शनिक समस्याएँ मूलत: मैं अपने पथ को नहीं जानता हूँ का ही रूप हैं अर्थात् दार्शनिक समस्याएँ मानसिक रोग या मानसिक उलझन के ही समान हैं, इसलिए दर्शनशास्त्र का कार्य इनका निदान करना है। विट्गेन्सटाइन के अनुसार दार्शनिक किसी समस्या का निवारण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार से किसी बीमारी का उपचार किया जाता है। उनकी मान्यता है कि भाषा में मोहिनी शक्ति होती है जो हमें उसकी ओर आकृष्ट करती है और हम दार्शनिक समस्याओं से ग्रसित हो जाते हैं, इस कारण किसी शब्द अथवा वाक्य का प्रयोग उसके उचित संदर्भ में ही करना चाहिए जिससे कि समस्या का सूत्रपात ही न हो। जैसा कि उन्होंने अपनी *Investigations* में कहा कि दर्शनशास्त्र में आपका प्रयोजन क्या है? मक्खी को बोतल से बाहर निकलने का मार्ग प्रशस्त करना।[15]

उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के दार्शनिक विचारों का केन्द्रीय सिद्धान्त 'भाषायी खेल का सिद्धान्त' (*Language-Game Theory*) है। इस सिद्धान्त की स्पष्ट मान्यता है कि भाषा एक खेल के सदृश कार्यरत होती है। सामान्यत: 'खेल' शब्द का प्रयोग विविध खेलों जैसे- शतरंज का खेल, हॉकी का खेल, फुटबॉल का खेल, ताश का खेल आदि के लिए किया जाता है। इन सभी खेलों में अक्षरश: साम्यता नहीं होती, किन्तु इन सभी में कुछ न कुछ साम्यताएँ अवश्य निहित होती हैं अन्यथा इन्हें खेल की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। जिस प्रकार कि किसी परिवार के दो या दो से अधिक सदस्यों में पूर्णरूपेण साम्यता नहीं होती किन्तु उनमें कुछ न कुछ जैसे- रंग, कद, चाल, शारीरिक बनावट आदि में साम्यता होती है जिसके कारण उन्हें पारिवारिक सदस्य कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार दो या दो से अधिक खेलों में भी साम्यता होती है और यही स्थिति भाषा के क्षेत्र में भी लागू होती है। माइकल स्क्रीवन ने अपने आलेख "*The Logic of Criteria*" में उदाहरण के द्वारा इसे अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा कि माना हम 'नीबू' शब्द पर विचार करते हैं एवं नीबू में 'क', 'ख', 'ग', 'घ' आदि विशिष्टताएँ हैं। यदि किसी वस्तु में ये सभी गुण मौजूद हैं तो वह अनिवार्यत: 'नीबू' है; लेकिन किसी वस्तु में इनमें से एक या एक से अधिक जैसे- 'ख', 'ग' गुण निहित नहीं हैं फिर भी इसे नीबू ही कहा जाएगा।[16] उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन का मानना है कि भाषा अथवा खेलों में साम्यताओं का जटिल पुंज होता है, जिसमें कि आड़ी-तिरछी साम्यता, वर्णन की साम्यता, परस्पर व्याप्त साम्यता आदि निहित होती है। प्रश्न उठता है कि इन साम्यताओं को किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है अथवा इन्हें क्या कहकर पुकारा जा सकता है? इस समस्या से विट्गेन्सटाइन भली भांति अवगत थे एवं इसीलिए इसे ध्यान में रखते हुए उन्होंने कहा कि इसकी सर्वाधिक उपयुक्त अभिव्यक्ति 'पारिवारिक साम्यता' (*Family Resemblance*) ही हो सकती है। इस प्रकार उन्होंने स्वीकार किया कि भाषा के प्रयोग में ही उसका अर्थ निहित है अथवा दूसरे शब्दों में प्रयोग या संदर्भ ही एकमात्र ऐसा निकष है जिससे अर्थ का निर्धारण संभव है।

उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के अनुसार दार्शनिकों का कार्य किसी नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन करना अथवा उसका विकास करना नहीं है अपितु गहन बेचैनी या मानसिक व्याकुलता का समाधान प्रस्तुत करना है। इस कारण विट्गेन्सटाइन ने *Investigations* में कहा कि निदान इस अर्थ में है कि शब्दों को उनके आध्यात्मिक प्रयोगों से निकालकर दैनिक प्रयोगों में वापस लाना है।[17] विट्गेन्सटाइन के अनुसार दार्शनिक समस्याओं का मूल हमारी भ्रांत धारणाएँ हैं अर्थात् जब हम यह भूल जाते हैं कि शब्द या वाक्य 'भाषायी खेलों' से ही अपना अर्थ प्राप्त करते हैं अथवा किसी दार्शनिक समस्या का उद्भव तब होता है जब या तो भाषा छुट्टी पर होती है या फिर भाषा निष्क्रिय इंजन की तरह विश्राम कर रही होती है, इसलिए जिस प्रकार की समस्या है हमें उसी प्रकार का भाषायी खेल खेलना होगा। विट्गेन्सटाइन का यह भी मानना है कि किसी भी दार्शनिक समस्या का निदान केवल एक ही विधि से किया जाए यह अपरिहार्य नहीं है, अपितु भिन्न-भिन्न समस्याओं का निदान उसके भाषायी प्रयोगों पर निर्भर करता है। भाषा को स्पष्ट करने के लिए विट्गेन्सटाइन शब्दों की तुलना उपकरणों से करते हैं। उनके अनुसार शब्दों के कार्य विविध उपकरणों की ही तरह भिन्न-भिन्न हैं। भाषा की विविधता के ज्ञान हेतु शब्दों या वाक्यों के वास्तविक संदर्भों अथवा प्रयोगों को देखना चाहिए। ध्यातव्य हो कि उपरोक्त विश्लेषण व्याकरणात्मक (*Grammatical*) है, किन्तु यह सतही व्याकरण (*Surface Grammar*) न होकर गहन व्याकरण (*Depth Grammar*) है जिसका घनिष्ठ सम्बन्ध शब्दों के प्रयोगों अथवा भाषीय खेलों से है। इस ओर ही इंगित करते हुए जॉन विजडम लिखते हैं कि अर्थ मत पूछों, प्रयोग पूछों।[18] जबकि, भाषीय खेलों के संदर्भ में डेविड पोल ने कहा कि विट्गेन्सटाइन का उद्देश्य पूर्णत: रूढ़िवादी एवं नकारात्मक है, जो भाषा में किसी भी प्रकार की संभावना को स्वीकार नहीं करता।[19] किन्तु यह मत अनुचित प्रतीत होता है क्योंकि, विट्गेन्सटाइन विशिष्ट उद्देश्यों के लिए पारिभाषिक शब्दों को स्वीकार करते हैं जिसका अभिप्राय मात्र यह है कि भाषा का सम्बन्ध हमेशा प्रयोग से होता है एवं संदर्भों के अनुरूप इसका अर्थ निर्धारण होता है।

इसके अतिरिक्त, विट्गेन्सटाइन का मानना है कि दर्शनशास्त्र भाषा के माध्यम से हमारी बुद्धि की मोहिनी शक्ति के विरूद्ध युद्ध है। प्रश्न उठता है कि क्या भाषायी विश्लेषण केवल शाब्दिक विश्लेषण है? इस विश्लेषण से तथ्यों का ज्ञान संभव नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर देना इतना आसान नहीं है, किन्तु यदि भाषायी विश्लेषणात्मक दर्शन का गहन अध्ययन नहीं किया गया हो तो ऐसी भ्रांति स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है। गिलबर्ट राइल के शब्दों में दार्शनिक समस्याओं को भाषायी कहने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि ये भाषा विज्ञान, व्याकरण, छंदशास्त्र, स्वरविज्ञान, अलंकारशास्त्र आदि की समस्याएँ हैं।[20] इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि इन्हें भाषायी कहने से प्रथम स्तर की भ्रांति होती है तो अर्थ, अवधारणा या प्रतिज्ञप्ति कहने से द्वितीय स्तर की भ्रांति होगी क्योंकि, 'विश्लेषण' के प्रयोग में ही यह निहित है कि दार्शनिकों का कार्य प्रयोगशाला में अथवा पुलिस में कार्य करने के ही समान है और उससे कम दुरूह नहीं है। इस संदर्भ में गिलबर्ट राइल का मानना है कि दार्शनिकों के कार्यों की तुलना जासूस अथवा रसायनशास्त्री के बजाए मानचित्रकार के अधिक निकटवर्ती है।[21]

यद्यपि, सर्वप्रथम साधारण भाषा के अध्ययन की ओर दार्शनिक का ध्यान आकृष्ट करने का कार्य जी०ई० मूर ने किया, लेकिन कैम्ब्रिज वापसी के साथ ही इसे व्यवस्थित रूप से विकसित करने के कारण इसका मूलभूत श्रेय उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन को है। उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के प्रभाव से जहाँ एक ओर अनेक प्रतिष्ठित कैम्ब्रिज दार्शनिकों जैसे- जॉन विजडम, जी०ई०एम० एन्सकाम्वे, नॉरमन मैल्कॉम आदि ने कैम्ब्रिज में साधारण भाषा दर्शन को विकसित किया, तो वहीं दूसरी ओर अनेक प्रतिष्ठित ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों जैसे- गिलबर्ट राइल, जे०एल० आस्टिन, पी०एफ० स्ट्रासन, जे०आर० सर्ल आदि ने साधारण भाषा दर्शन में कुछ मूलभूत संशोधन के साथ इसे ऑक्सफोर्ड में विकसित किया। उपरोक्त परम्पराओं को क्रमश: 'कैम्ब्रिज साधारण भाषा दर्शन' एवं 'ऑक्सफोर्ड साधारण भाषा दर्शन' के नाम से अभिहित किया जाता है। ऑक्सफोर्ड साधारण भाषा दार्शनिकों के प्रभाव से साधारण भाषा दर्शन में अनेक नवीन आयाम जुड़ते गए, जिसके कारण ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों के विचार विट्गेन्सटाइनियों (विट्गेन्सटाइन एवं कैम्ब्रिज साधारण भाषा दार्शनिकों) के विचारों से कई बातों

में भिन्न हो गए। जैसा कि जॉन पॉसमोर लिखते हैं कि ऑक्सफोर्ड में विट्गेन्सटाइन के विचारों ने उससे बहुत ही अलग दार्शनिक वातावरण में प्रवेश किया, जो कैम्ब्रिज में व्याप्त था। अधिकांश ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा ऐसे पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त हुई जो शास्त्रीय परम्परा पर आधारित है, विशेषकर अरस्तू का प्रभाव जितना ऑक्सफोर्ड में है उतना कैम्ब्रिज में नहीं ..... तब ऑक्सफोर्ड में विट्गेन्सटाइन के विचार अरस्तू के भाषाशास्त्रीय तने पर आरोपित किए गए, इस तने पर ऐसे फल हुए; जो अन्य विचारों के साथ, कैम्ब्रिज फलों की तुलना में अधिक शुष्क एवं नीरस हैं।[22] इस प्रकार ऑक्सफोर्ड, साधारण भाषा दर्शन का केन्द्र बन गया। साधारण भाषा दर्शन पर ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों का प्रभाव इतना गहन था कि कई विद्वान साधारण भाषा दर्शन एवं ऑक्सफोर्ड को परस्पर पर्याय मानते थे। जहाँ एक ओर विट्गेन्सटाइन का मानना था कि दर्शनशास्त्र का कार्य किसी भी रूप में भाषा के वास्तविक प्रयोगों में हस्तक्षेप करना नहीं है अपितु यह मात्र इसका वर्णन कर सकता है, तो वहीं दूसरी ओर ऑक्सफोर्ड साधारण भाषा दार्शनिक विट्गेन्सटाइन के इस मत को नहीं स्वीकार करते हैं क्योंकि उन सभी का मानना है कि साधारण भाषा का व्यवस्थित अध्ययन अनिवार्य है जो कि विश्लेषण का मूलभूत आधार है। जैसा कि आस्टिन ने कहा कि शब्दों के हमारे सामान्य भण्डार में वे सभी अन्तर शामिल है, जिन्हें मनुष्यों ने अधिक आशापूर्ण ढ़ंग से वर्णित करने योग्य पाया है और कई पीढ़ियों के जीवन काल में उन्होंने जिन सम्बन्धों को चिन्हित करने योग्य पाया है; ये निश्चित रूप से अधिक सार्थक एवं अनगिनत हैं, क्योंकि ये योग्यतम के जीवित रहने के लंबे परीक्षण के बावजूद टिके हुए हैं और कम से कम सभी सामान्य एवं तर्कत: व्यावहारिक स्थितियों में, ये उन सभी से अधिक सूक्ष्म हैं जिन्हें आप या मैं किसी शाम की आरामदायक कुर्सी पर बैठकर सोचते हैं, जो सर्वाधिक पसंदीदा विधि है। [23] इसके अलावा, विट्गेन्सटाइन का मानना है कि दर्शनशास्त्र का कार्य कोई नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन करना नहीं है, अपितु दार्शनिक समस्याओं का उपचार के समान समाधान करना है; जबकि ऑक्सफोर्ड दार्शनिक इस मत के तीक्ष्ण विरोधी हैं। ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों का मानना है कि दर्शनशास्त्र का कार्य मात्र नकारात्मक नहीं है अर्थात् कुछ समस्याएँ उपचार योग्य हैं लेकिन सभी नहीं, इसलिए दर्शनशास्त्र का कार्य रचनात्मक भी है। पी०एफ० स्ट्रासन ने विट्गेन्सटाइन के उपरोक्त विचार का खण्डन करते हुए कहा कि दार्शनिक का चिकित्सक के समान चित्रण संदेहपूर्ण एवं अचम्भित करने वाला है क्योंकि यह एकतरफा और अतिशयोक्ति से भरपूर है।[24]

हालांकि उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के दार्शनिक विचार ही वह प्रेरणादायक स्त्रोत थे, जिनके प्रभाव में साधारण भाषा दर्शन पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। जिसका उल्लेख स्वयं ऑक्सफोर्ड दार्शनिक पी०एफ० स्ट्रासन करते हुए कहते हैं कि उचित अथवा अनुचित, विट्गेन्सटाइन के विशिष्ट सिद्धान्त सर्वाधिक रुचिकर एवं महत्वपूर्ण हैं, लेकिन दार्शनिक विधि के प्रतिमान के रूप में आज भी इस पुस्तक *Investigations* का महत्व इससे भी अधिक है (यहाँ मेरा तात्पर्य पुस्तक की शैली एवं आकार की विशेषता से नहीं है); इससे दार्शनिक क्रान्ति प्रगाढ़ होगी, जिसके लिए किसी अन्य की अपेक्षा इसका लेखक जिम्मेदार था।[24] साथ ही वी०सी० चैपल ने भी इसकी पुष्टि की है कि विट्गेन्सटाइन ने ही अनेक दार्शनिकों को इस मत की ओर आकर्षित किया कि दर्शन मूलत: भाषायी है। व्यापकत: यह उनके कार्य का ही ऋण है कि आज आंग्ल-अमेरिकी दर्शन में यह मत लोकप्रिय है।[26]

निष्कर्ष

फलत: यदि हम विट्गेन्सटाइन के (पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती दोनों) दार्शनिक विचारों का सूक्ष्मतापूर्ण अध्ययन करें तो हमें यह प्रतीत होगा कि पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन के विचारों की अपेक्षा उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के विचार अधिक गंभीर एवं चिन्तनशील है, जिनके प्रभाव से समकालीन पाश्चात्य दर्शन में भाषायी विश्लेषण की प्रवृत्ति का विकास हुआ। उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन विचारों की महत्ता इस अर्थ में भी समझी जा सकती है कि सम्पूर्ण विश्व में दो-दो विश्वयुद्धों का प्रभाव इतना विषद एवं भयावह था कि मनुष्य अपने दैनिक जीवन में कृत्रिमता एवं वैज्ञानिकता से निजात पाने का भर्षक प्रयास कर रहा था; जिसके फलस्वरूप दर्शनशास्त्र सामान्य मनुष्य की पहुँच से दूर हो गया क्योंकि उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के पूर्व में दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत कृत्रिम एवं तार्किक विश्लेषण की चिन्तन धारा प्रवाहित थी, जिसमें पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन की भी अहम भूमिका थी। इस कारण उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन सर्वप्रथम अपने पूर्ववर्ती विचारों के खण्डन से अपने दर्शन का आरम्भ करते हैं तत्पश्चात् साधारण भाषा विश्लेषण की नींव रखते हैं क्योंकि, पुन: दर्शनशास्त्र की सामान्य मनुष्य तक पहुँच उसके दैनिक व्यवहार की भाषा में उत्पन्न समस्या के समाधान से ही संभव हो सकती थी। यही कारण है कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि विट्गेन्सटाइन का दर्शन वह मील का पत्थर है, जिसके विचारों को ठीक ढ़ंग से समझे बिना विश्लेषणात्मक दर्शन की परम्परा का विकास ही असंभव एवं कोरी कल्पना मात्र रह जाएगा।

संदर्भ

1. Wright, G.H.V. (1982). *'Wittgenstein in Relation to His Times'*. In B. McGuinness (Ed.), *Wittgenstein and His Times*, Oxford: Basil Blackwell Publishers Limited, p. 108.
2. Wittgenstein, L. (2001). *Tractatus-Logico-Philosophicus*. (Trans.). D.F. Pears & B.F. McGuinness, London & New York: Routledge Classics, T. 4.002.
3. Bernstein, R.J. (1966). *'Wittgenstein's Three Languages'*. In I.M. Copi & R.W. Beard (Eds.), *Essays on Wittgenstein's Tractatus,* New York: The Macmillan Company, p. 235.
4. Sellars, W. (1966). *'Naming and Saying'*. In I.M. Copi & R.W. Beard (Eds.), *Essays on Wittgenstein's Tractatus,* New York: The Macmillan Company, pp. 249-270.
5. Ayer, A.J. (1952). *Language, Truth and Logic*. New York: Dover Publication Inc., p. 31.
6. Wright, G.H.V. (2001). *'A Biographical Sketch'*. Reprinted in N. Malcolm, *Ludwig Wittgenstein: A Memoir*. Second Edition, Oxford: Clarendon Press, pp. 14-15.
7. Passmore, J. (1957). *A Hundred Years of Philosophy*. London: Gerald Duckworth & Co. Ltd., p. 425.
8. Rorty, R.M. (1992). *'Introduction'*. In R.M. Rorty (Ed.), *The Linguistic Turn: Essays in Philosophical Method,* Chicago & London: The University

of Chicago Press, p. 3.

[9] Wright, G.H.V. (2001). *'A Biographical Sketch'*. Reprinted in N. Malcolm, *Ludwig Wittgenstein: A Memoir*. Second Edition, Oxford: Clarendon Press, p. 15.

[10] Quinton, A.M. (1968). *'Excerpt from Contemporary British Philosophy'*. In G. Pitcher (Ed.), *Wittgenstein: The Philosophical Investigations*, London: Macmillan and Co. Ltd., p. 9.

[11] Wittgenstein, L. (1969). *The Blue and The Brown Books*. Oxford: Blackwell Publishing Ltd., p. 27.

[12] Passmore, J. (1957). *A Hundred Years of Philosophy*. London: Gerald Duckworth & Co. Ltd., p. 429.

[13] Wittgenstein, L. (1986). *Philosophical Investigations*. (Trans.). G.E.M. Anscombe, Oxford: Basil Blackwell, Sec. 43.

[14] Ibid., Sec. 340.

[15] Ibid., Sec. 309.

[16] Scriven, M. (1959). *'The Logic of Criteria'*. The Journal of Philosophy, Inc., Vol. 56, No. 22, pp. 857-868.

[17] Wittgenstein, L. (1986). *Philosophical Investigations*. (Trans.). G.E.M. Anscombe, Oxford: Basil Blackwell, Sec. 116.

[18] Wisdom, J. (1952). *'Ludwig Wittgenstein, 1934-1937'*. Mind, New Series Vol. 61, No. 242, pp. 258-260.

[19] Pole, D. (2013). *The Later Philosophy of Wittgenstein*. London: Bloomsbury Publishing Plc., p. 97.

[20] Ryle, G. (1957). *'The Theory of Meaning'*. In C.A. Mace (Ed.), *British Philosophy in the Mid Century*, London: Allen and Unwin, p. 263.

[21] Ibid., p. 264.

[22] Passmore, J. (1957). *A Hundred Years of Philosophy*. London: Gerald Duckworth & Co. Ltd., pp. 439-440.

[23] Austin, J.L. (1989). *'A Plea For Excuses'*. In G.J. Warnock and J.O. Urmson (Eds.), *Philosophical Papers*, Oxford: Oxford University Press, p. 182.

[24] Strawson, P.F. (1992). *Analysis and Metaphysics: An Introduction to Philosophy*. New York: Oxford University Press, p. 3.

[25] Strawson, P.F. (1968). *'Review of Wittgenstein's Philosophical Investigations'*. In G. Pitcher (Ed.), *Wittgenstein: The Philosophical Investigations*, London: Macmillan and Co. Ltd., p. 64.

[26] Chappell, V.C. (1964). *Ordinary Language: Contemporary Perspectives in Philosophy Series*, pp. 1-2.